आजादी की लड़ाई में झाँसी का योगदान

डॉ0 किशन यादव,

अध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग व शोध केन्द्र,
बुन्देलखण्ड कॉलेज,झाँसी (उ.प्र.)

सन् 1600 ई. से लेकर लगभग सन् 1757 ई. तक जितने भी अंग्रेज भारत में थे वे एक व्यापारिक (ईस्ट इंडिया कम्पनी) कम्पनी के सदस्य के रूपा में रह रहे थे। उनको इस बात का अहसास था कि वे विदेशी हैं इस बात के प्रमाण हैं कि भारत के तत्कालीन राजनैतिक जीवन को संचालित करने वाले लोग, चाहे वे मुगलिया साम्राज्य से सीधे तौर पर सम्बन्धित हों या परोक्ष रूपा से उनके कृपा पात्र हों, ठीक से समझ नहीं पाये थे कि अंग्रेजों के आगमन से क्या प्रभाव भविष्य में हो सकते हैं। इस बात के कई प्रमाण मौजूद हैं कि अंग्रेज व्यापारियों को कई ऐसी सुविधायें भी दे दी गई थी जो भविष्य में खतरनाक साबित हुई, उदाहरणार्थ– औरंगजेब द्वारा अंग्रेजों को अपनी छावनियों की घेराबन्दी करनेकी इजाजत और शाही सेना की टुकड़ियों द्वज्ञरा उनकी सुरक्षा का प्रबंध करना। इन पूर्णतया सुरक्षित छावनियों के माध्यम से अंग्रेजों को अपना कूटनीतिक जाल फैलाने में काफी सुविधा मिल गई। फिर भी 1757 के पलासी युद्ध तथा 1761 के तृतीय पानीपत के युद्ध तक अंग्रेज मनमाने ढ़ंग से अपनी गतिविधियों का संचालन नहीं कर सके। किन्तु इन युद्धों के बाद बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा दक्षिण भारत के कई भाग उनके अधिकार में आ गये। सिख, मराठे तथा हैदरअली और टीपू सुल्तान सभी शक्तियों का ह्रास हो जाने के ाबद तथा मुगलिया साम्राज्य की लगातार अवनति और विघटन के कारण अंग्रेजी प्रभुत्व मजबूती की तरफ बढ़ने लगा और उसका व्यापारिक क्षेत्र एक क्षेत्रीय शक्ति के रूपा में उभर कर आया। यह एक खतरनाक लक्षण था, किन्तु भारत की बिखरी हुई राजनैतिक सत्ता इसका सही आकलन नहीं कर सकी। ऐसा लगता है कि 1757 से 1762 के बीच के समय में इस बात की संभावना बन सकती थी कि अगर राजनैतिक शक्तियों एक जुट होकर प्रयत्न करती तो शायद अंग्रेजों को उखाड़ फेकना सम्भव हो सकता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि उस वक्त की सत्ता से जुड़े लोग अपने–अपने सामन्तवादी स्वार्थों की पूर्ति में लगे थे। इतिहासकारों ने तत्कालीन राजनीति के इस पहलू पर ठीक से ध्यान नहीं दिया है। बहरहाल, 1762 तक अंग्रेजों ने अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली थी।

''सन् 1757 से 1857 तक भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत के शोषण का एक लम्बा दौर चला। इन लगभग 100 वर्षों के दौरान अंग्रेज यह समझ चुके थे कि भारत का दोहन सम्भव है और इसके कई आर्थिक लाभ हो सकते हैं।''[1] उन्होंने अपनी समुद्री शक्ति में वृद्धि की और अपनी सैनिक टुकड़ियों को नये माहौल में खप सकने की ट्रेनिंग दी। इसके साथ ही साथ भारत की परंपरागत अर्थ व्यवस्था पर भयानक प्रभाव पड़ने शुरू हो गये।

अंग्रेजों की युद्ध की परम्परा भी भारतीयों से भिन्न थी उन्होंने कुछ ऐसे तरीके अपना लिये थे जो भारतीय हिन्दुओं तथा मुसलमानो के लिए एक खतरा हो गये थे। कहा जाता है कि उनके

पास कुछ ऐसे कारतूस थे जिनका प्रयोग करने के पहले उनको दाँत से काटना पड़ता था। हिन्दुओं और मुसलमानों में यह बात प्रसारित हो गई थी कि इन कारतूसों में गाय अथवा सुअर की चरबी का प्रयोग होता है।[2] इससे सिपाहियों में एक असंतोष की भावना फैल गई। एक प्रश्न अचानक उठ खड़ा हुआ, क्या हम अपनी रोजी रोटी के लिए धर्म खराब कर दें? कई सिपाहियों ने कारतूसों को छूने से साफ इंकार कर दिया। अंग्रेजों द्वारा सख्ती किये जाने पर मंगल पांडे नाम के एक सिपाही ने अपने कमाण्डर को मौत के घाट उतार दिया। हिन्दू सिपाहियों का एक बड़ा जत्था, अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर उठा। इस वक्त यह घटना वास्तव में एक सिपाही विद्रोह ही था। किन्तु इसको मेरठ के बाहर फैलने में देर नहीं लगी। 10 मई 1857 को बागी सिपाहियों का एक जत्था मेरठ से दिल्ली पहुँच गया। देखते ही देखते दिल्ली के हजारों सिपाहियों ने इन बागियों का साथ देना शुरू कर दिया और जल्दी ही दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इस कार्य में उन्होंने मुगलिया साम्राज्य के आखिरी बादशाह बहादुरशाह जफर को अपने साथ मिला लिया और उसको इस बात के लिए उकसाने में सफल हो गये कि वह अपने को शहंशाह ए हिन्दुस्तान घोषित कर दें। 80 वर्षीय वृद्ध, संवेदनशील शायर जफर ने कुछ हिचकिचाहट के बाद विद्रोह की बागडोर अपने हाथ में लेना स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे व्रिदोह की आग पूरे उत्तरी भारत में फैल गई। विशेषकर उत्तरप्रदेश के लगभग सभी बड़े स्थान, लखनऊ, रामपुर, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, झॉसी आदि सिपाहियों के विद्रोह से भड़क उठे और कई सामंतों, नवाबों और जनता के लोगों ने उनका साथ दिया। लखनऊ में हजरत महल ने, रामपुर बरेली में खानबहादुर ने, कानपुर ने नाना साहब ने और झॉसी में महारानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोह की कमान सम्भाली। ये सभी भूतपूर्व राजा और नवाब अंग्रेजों की दमन नीति के शिकार हो चुके थे। महारानी लक्ष्मीबाई ने शुरू में अंग्रेजों से कुछ बातें मनवाने का प्रयत्न किया किन्तु अन्त में वे खुले रूपा से विद्रोह में शामिल हो गई और बड़ी बहादुरी से लड़ीं, बंगाल के कुछ हिस्सों में भी इसका प्रभाव पड़ा, किन्तु दक्षिणी भारत में इसका कोई खास प्रभाव नहीं दिखाई दिया। वहाँ के सैनिक बफादार ही बने रहे।

इस प्रकार का विद्रोह जो वास्तव में एक सिपाही विद्रोह के रूपा में प्रकट हुआ था उसका दायरा दूर–दूर तक फैल गया। सिपाहियों के साथ सामंत और नवाब भी हो लिये। यह कहना मुश्किल है कि आम जनता ने किस हद तक विद्रोहियों का साथ दिया। किन्तु इतना अवश्य है कि काफी संख्या में लोगों ने विद्रोहियों की मदद की और भारी संख्या में ऐसे भी लोग मौजूद थे जो अंग्रेजों द्वारा सताये जाने के बाद मरने–मारने पर उतारू हो गये थे। इस वक्त दो मनोवृत्तियाँ काम कर रही थीं।[3] एक ओर तो सामंतों और नवाबों को अपने हक छिन जाने का अफसोस था, दूसरी ओर हिन्दू समाज में इस बात का भी भय फेल गया था कि अंग्रेज उनको धर्मच्युत करना चाहते हैं। इस बात के भी संकेत मिलते हैं कि कई जगहों पर धर्म परिवर्तन के मामले भी हुए जिनसे लोगों में असंतोष था। एक ओर धर्मच्युत होने का भय दूसरी ओर आर्थिक विपन्नता ये दोनों कारण विद्रोह की जड़ में मौजूद थे। सिपाही प्रायः वे लोग थे जिनकी जमीन छिन चुकी थी और वे बहुत छोटी तनख्वाह पर काम करने के लिए मजबूर थे। शुरूआत के दिनों में तो अंग्रेजों ने सिपाहियों की धार्मिक भावना का थोड़ा बहुत ख्याल किया लेकिन ज्यों ज्यों उनकी पकड़ मजबूत होती गई वे इन धार्मिक भावनाओं की अवहेलना करने लगे। इन सेनाओं में ब्राह्मण भी बड़ी संख्या में थे और उनके अन्दर कई प्रकार के खान–पान सम्बन्धी पूर्वाग्रह थे। 1824 में जब बैरकपुर के कुछ सिपाहियों को बर्मा भेजने का हुक्म हुआ तो सिपाहियों ने यह कह कर मना कर दिया कि वे समुद्र पार करने के बाद धर्मच्युत हो

जायेंगें, ऐसी स्थिति में अंग्रेजों के लिए धीरे धीरे कठिन होता चला गया कि वे सिपाहियों के अनुशासन रखने की बात कह सकें। एक साधारण सिपाही को सिर्फ सात रूपाये माहवार का वेतन मिलता था। ऐसी स्थिति में उससे अनुशासन की अपेक्षा करना व्यर्थ था। अंग्रेजी सत्ता के संचालक इन परिस्थितियों को ठीक से ऑक नहीं सके और एक भयंकर विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो गई, दरअसल अंग्रेजी हुक्मरान इस बात को ठीक से समझ नहीं सके कि धार्मिक रूढ़िवादिता छोटे तबके के लोगों में ही अधिक होती है और बिना समुचित आर्थिक लाभ के लालच के उनको अधिक समय तक शांत नहीं रखा जा सकता, इसके अलावा एक बात और भी थी। अंग्रेजों को यह अहसास हो चला था कि उनकी सैनिक विधायें और उनकी बड़प्पन की भावना शायद उनकी मदद कर जाए, किन्तु विद्रोह के वक्त उनको इस दिशा में सफलता नहीं मिली, भले ही 1–2 साल के भीरत वे अपना प्रभाव जमाने में सफल हो गये।[4] अंग्रेजी हुक्मरानों की सबसे बड़ी गलती यह थी कि उन्होंने हिन्दुस्तानी सिपाहियों और अंग्रेज सिपाहियों के बीच भेदभाव की नीति का अनुसरण किया। वे कभी भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों को यह अहसास न दिला सके कि उनकी सेना की कद्र की जा रही है। वे एक प्रकार से बेगार ढोनेवाले गरीब किसान होकर रह गये। अंग्रेजों ने एक गलती और की। उन्होंने यह बात नजरअंदाज कर दी कि हिन्दुस्तानी सिपाही गरीब जनता के बीच से ही आये थे, और उनका जनता से सीधा सम्बन्ध था। नतीजा यह हुआ कि जब विद्रोह की शुरूआत हुई तब तो सिपाही अकेले थे किन्तु जब बात आगे बढ़ी तो जनता की पूरी सहानुभूति उनके पक्ष में हो गई। यह कहना तो कतई ठीक न होगा कि किसी एक बिन्दु पर सिपाही विद्रोह जनता का विद्रोह हो गया था, किन्तु यह कहना भी गलत होगा कि जनता का इस विद्रोह से कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि एक मजबूत नेतृत्व मिल जाता तो यह विद्रोह एक बड़े पैमाने पर जनता का विद्रोह बन सकता था, किन्तु ऐसा होने के पहले ही इसे निर्ममता से दबा दिया गया।

अंग्रेजी हुकूमत ने शुरू से ही दमन की नीति अपनाई। उनको यह पता लगाने में देर नहीं लगी कि किस वर्ग के लोगों ने विद्रोह का समर्थन किया। चाहे वे सिपाही हों, दस्तकार हों, किसान हों अथवा जमींदार या तालुकेदार हों– अगर वे विद्रोहियों के पक्ष में थे तो उनकी पूरी तरह दबाने की तरकीबें निकाली गई। अवध के ज्यादातर तलुकेदारों की जमीनें छीन ली गई और वे पूरी तरह असहाय हो गये।

विद्रोह के दौरान कुछ समय तक ऐसा लगा कि जैसे अंग्रेजों की सत्ता समाप्त हो जायेगी। यहाँ तक बात बड़ी कि लगभग सभी जगह के बागियों ने बहादुरशाह जफर को हिन्दुस्तान का सम्राट स्वीकार कर लिया। दिल्ली विद्रोह का केन्द्र बन गया। बहादुरशाह के नाम पर सिक्के तक ढाले गए। किन्तु यह स्थिति बहुत कम समय तक टिक पाई। बहादुरशाह जफर को अंग्रेजों ने कैद कर लिया और उसे रंगून भेज दिया गया।[5] अगर उस वक्त बहादुरशाह का राजनैतिक नेतृत्व ने सही ढंग से काम किया होता तो संभवतः स्थिति भिन्न होती। बहादुरशाह शायरी में ज्यादा और राजनीति में कम ध्यान देता था। इसके अलावा उसकी राजनीतिक स्थिति भी इस लायक नहीं थी कि वह अंग्रेजों को मुँहतोड़ जवाब दे सकता। झाँसी की रानी भी जनरल ह्यूम रोज के नेतृत्व में अंग्रेज सेना से लड़ते लड़ते वीरगति को प्राप्त हो गई। बाद में जनरल ने उसके बारे में कहा ''यहाँ वह औरत सोई हुई है, जो विद्रोहियों की एक मात्र मर्द थी''।[6] सच बात यह है कि झाँसी की रानी तथा बिहार के कुँवरसिंह को छोड़कर किसी अन्य नेता ने विद्रोहियों का हार्दिक समर्थन नहीं दिया। इसके अलावा, विद्रोहियों के पास अस्त्र–शस्त्रों की भारी कमी थी। जब तक गोला–बारूद बचा रहा वे

लड़ते रहे, बाद में या तो उन्होंने आत्म समर्पण कर दिया या मृत्यु के शिकार हो गये।

जितना भी आधा–अधूरा नेतृत्व बागियों को मिल पाया वह ऐसे लोगों से आया जो राजनीति की दृष्टि से सम्मानित थे अवश्य, किन्तु उनके पास एक नियोजित ढ़ंग से काम करने की क्षमता नहीं थी। यातायात के साधन इतने कम थे कि इन नेताओं का परस्पर संबंध स्थापित नहीं हो सका। इसके अलावा, इन लोगों ने जनता की भागीदारी की ओर ध्यान नहीं दिया। समाज से ज्यादातर समृद्ध और पढ़े लिखे लोगे, जो हरदर्जे के स्वार्थी भी थे, कभी भी अंग्रेजों के खिलाफ खड़े नहीं हुए। उनका ज्यादा ध्यान इस तरफ रहा कि किस प्रकार उनको अंग्रेजों के माध्यम से कुछ लाभ हो सकता है।[7] अगर कुछ ऐसे व्यक्ति होते जो जनता के सभी वर्गों के लोगों का ध्यान अंग्रेजों की शोषण की नीति की तरफ मोड़ सकते तो जनता का अधिक सहयोग मिल सकता था। जब दिल्ली को दुबारा अंग्रेजों ने अपने अधीन किया तो उस वक्त उनकी सेना में हिन्दुस्तानी सिपाही ही ज्यादा थे। इससे प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि इस विद्रोह की मौलिक प्रेरणा किसी हद तक अंग्रेजों का विरोध अवश्य थी, किन्तु इससे भी अधिक व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति थी। यहाँ तक भी हम कह सकते हैं कि जिन नेताओं ने इस विद्रोह में भाग लिया वे भी पूर्णरूपेण निस्वार्थ नहीं थे। वे इस प्रक्रिया में इस लिए कूद पड़े थे क्योंकि उनको अंग्रेजों से व्यक्तिगत रंजिश थी। यह नहीं कहा जा सकता कि उस वक्त कोई व्यापक राष्ट्रीय भावना काम कर रही थी। अगर अंग्रेजों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों का तिरस्कार न किया होता और आम जनता को तथा सामंतों को कई प्रकार की आर्थिक कठिनाईयों में न डाला होता तो विद्रोह पैदा ही न होता।

सन् 1859 तक लगभग सारे नेता या तो मारे गये, कैद कर लिये गयें, या भाग गये। दिल्ली के अंग्रेजों के अधीन पुनः आ जाने के बाद विद्रोही हताश हो गये। नये नेतृत्व की भी कोई आशा नहीं बची। धीरे–धीरे विद्रोह समाप्त हो गया। प्रोफेसर विपिनचन्द्र ने लिखा है ''यदि किसी ऐतिहासिक घटना का महत्व उसकी तात्कालिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, तो 1857 का विद्रोह भी महज एक ऐतिहासिक ट्रेजेडी नहीं थी। अपनी विफलता में भी इसने एक महान उद्देश्य की पूर्ति की। यह उस राष्ट्रीय आंदोलन का प्रेरणा स्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह हासिल न कर सका।''[8]

1857 का विद्रोह महज एक ऐतिहासिक ट्रेजेडी नहीं थी– यह निष्कर्ष किसी आधार पर ही निकाला जा सकता है। किसी ऐतिहासिक घटना का महत्व इतिहास की दृष्टि से अपनी सफलता पर बहुत हद तक निर्भर करता है। कुछ भी उपलब्ध न होने से उसके मूल्यांकन की दिशा अवश्य बदल जाती है। यह विद्रोह बाद की सफल घटना (1947) की स्वतंत्रता प्राप्ति) का प्रेरणा स्रोत था– इसमें कोई संदेह नहीं, इस अर्थ में इसका अपना महत्व है, किन्तु यह भी जान लेना आवश्यक है कि उस वक्त की परिस्थिति में इस विद्रोह ने क्या हासिल किया ? अगर यह एक विद्रोह मात्र न होता और एक राष्ट्रवादी संघर्ष के रूप में प्रकट होता तो आने वाली पीढ़ी को अगले 90 वर्ष का इंतजार न करना पड़ता। 1857–58 में अंग्रेज जिस स्थिति में थे उस स्थिति में उनको बाहर भगाना मुश्किल अवश्यक था, किन्तु कदाचित असंभव नहीं। ऐसा नहीं किया जा सका– इस वस्तुस्थिति का भी अपना एक महत्व है। कोई भी आन्दोलन, चाहे वह राजनैतिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो या सामाजिक, तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके पीछे एक नियोजित, तर्क संगत और सशक्त वैचारिक योजना न हो। जब व्यक्ति संगठित होकर लड़ते हैं तो उनका ध्येय व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होता है। अगर ऐसा नहीं है तो आन्दोलन असफल हो जाता है। 1857 के विद्रोह की बागडोर सिपाहियों के हाथ में

थी और उनके माध्यम से यह कुछ अन्य मृतप्राय सामंती शक्तियों के हाथ में चली गई। इसके पीछे न कोई आस्था थी, न योजना, न कोई सर्वसम्मत ध्येय। इसका असफल होना अवश्यम्भावी था। हॉ, एक बात भूली नहीं जा सकती। उस समय की सामाजिक पृष्ठभूमि में यह एक अप्रत्याशित घटना थी जिसने अंग्रेजी हुकूमत को पहली बार यह अहसास कराया कि महज दमनकारी नीतियों से काम नहीं चल सकता। स्वतंत्रता जिस तरह से हासिल की जा सकती है उसका इतिहास 1857 से नहीं उसके बाद शुरू होता है।

1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के कारण

1857 ई. में जो महान् संघर्ष भारत में अंग्रेजी कम्पनी के शासन का अन्त करने और उससे देश को मुक्ति दिलाने के लिए हुआ, भले ही अंग्रेजों ने उसका केवल विद्रोह लिख दिया हो परन्तु यह वास्तव में भारतीयों का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ही था क्योंकि इसका उद्देश्य भारत में से विदेशी राज्य का अन्त करना था। इस बात को लगभग सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है परन्तु इस महान आन्दोलन को किसी नाम से भी पुकारें, इसके निम्नलिखित कारण थे:[9]

राजनीतिक कारण

व्यपगत सिद्धांत : इस सिद्धांत का यह अर्थ था कि भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता सर्वोच्च या सर्वोपरि है, अतः देशी रियासतें उसके अधीन हैं और देशी रियासतों के प्रशासकों को अपने उत्तराधिकारियों के बारे में मान्यता ब्रिटिश सरकार से प्राप्त करनी पड़ेगी, वरना ब्रिटिश सरकार उन उत्तराधिकारियों को उन रियासतों का वैध शासक नहीं स्वीकार करेगी। यद्यपि यह नीति लार्ड डलहौजी से पहले भी प्रचलित थी परन्तु किसी भी पहले गवर्नर जनरल ने इस नीति को इतनी सख्ती से लागू नहीं किया था जितना कि लार्ड डलहौजी ने। लार्ड डलहौजी प्रत्येक अवसर से लाभ उठाना चाहता था। उसके काम में कुछ देशी रियासतों के राजाओं के लड़के नहीं थे। उन्होंने लार्ड डलहौजी से लड़के गोद लेने की आज्ञा मांगी जो कि उसने नहीं दी और उनके राज्य को अपने विशाल साम्राज्य में मिला लिया। लैप्स या व्यपगत सिद्धांत के अनुसार जो देशी राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाए गए वे ये थे : सतारा (1848), जैतपुर और सम्भलपुर (1850), बघाट (1850), उदयपुर (1852), यह उदयपुर रियासत राजस्थान की उदयपुर रियासत से भिन्न थी) झांसी (1853) और नागपुर (1854)। इन देशी राज्योंको अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाये जाने का केवल यह आधार था कि वहाँ के राजा पुत्रहीन थे।[10] यह आधार बिलकुल अनुपयुक्त था क्योंकि गोद लने की प्रथा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। लैप्स की नीति से अन्य राजे भी डर गये और समझने लगे कि कभी न कभी उनकी रियासतों को अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल कर लिया जायेगा।

अवध का ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया जाना

अवध की राजधानी लखनऊ थी और वहाँ पर नवाब वाजिदअली शाह का राज्य था। अवध के नवाब 1765 ई. के बाद से सदा अंग्रेजों के बहुत बफादार रहे थे परन्तु अंग्रेजों की साम्राज्य लिप्सा के सामने यह वफादारी भी कुछ काम नहीं आई। उन्होंने नवाब अवध पर यह आरोप लगाया कि उसका शासन प्रबन्ध खराब है और 13 फरवरी, 1856 ई. को एक घोषणा द्वारा अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया। बंगाल की सेना में अवध के बहुत अधिक सिपाही थे। जब उन्हें पता चला कि अंग्रेजों ने अवध के नवाब और वहाँ की जनता की बफादारी के बावजूद उनका राज्य नष्ट कर दिया है, तो उनके असंतोष की कोई सीमा नहीं रहीं।[11] शेष भारत के राजे महाराजे भी यह सोचने लगे कि अंग्रेजों की तरफ बफादारी का

क्या लाभ जबकि अंग्रेजों ने अवध जैसे स्वामिभक्त राज्य को भी नहीं छोड़ा। मेलसन ने लिख है कि ''अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने ओर वहाँ पर नई पद्धति के शुरू किये जाने से मुस्लिम कुलीनतंत्र, सैनिक वर्ग, सिपाही और किसान सब अंग्रेजों के विरूद्ध हो गये और अवध में असंतोष का बड़ा भारी केन्द्र बन गया।

देशी रियासतों के विलीनकरण की आलोचना करते हुए लुडलो ने अपनी पुस्तक ताज की नीति पर विचार (Thought on the Policy of the Crown) में लिखा है कि ''निश्चित ही भारत के निवासी मनुष्यों से गिरे हुए होते यदि ऐसी परिस्थितियों में भी उनी भावनायें विलीनीकरण से पीड़ितों के पक्ष में और उनकी रियासतों को विलीन करने वालों के विरूद्ध न होती। निश्चत ही भारत के निवासी मनुष्यों से गिरे हुए होतें यदि ऐसी परिस्थितियों में भी उनकी भावनायें विलीनीकरण से पीड़ितों के पक्ष में और उनकी रियासतों को विलीन करने वालों के विरूद्ध न होतीं। निश्चय ही भारत में कोई ऐसी स्त्री या बच्चा नहीं था जो कि हमारे इस विलीनीकरण के कारण हमारा शत्रु न बना हो।''[12]

बहादुरशाह के साथ अंग्रेजों का दुर्व्यवहार

अंग्रेजों ने शुरू में मुगल सम्राटों से कई अधिकार पत्र प्राप्त किए थे। कम्पनी के सिक्कों पर मुगल सम्राट का नाम होता था और अंग्रेज मुगलों को भेंट देते थे। लार्ड एलनब्रू ने बहादुरशाह को नजरें बन्द कर दी। अंग्रेजों ने बहादुरशाह का नाम सिक्कों से भी हटा दिया और अंग्रेज प्रतिनिधियों ने बहादुरशाह की तरफ अपना उचित सम्मान प्रदर्शित करना बन्द कर दिया। लार्ड डलहौजी ने मुगल सम्राट की उपाधि को खत्म करने का निश्चय किया और उसने बहादुरशाह के सबसे बड़े पुत्र मिर्जा जवाँ बख्त को युवराज बनाने से इनकार कर दिया क्योंकि वह अंग्रेजों के विरूद्ध था।[13] लार्ड डलहौजी ने षड्यंत्र करके राजकुमार कोयाश को युवराज बना दिया और उससे ये अपमानजनक शर्तें तय कर ली गयीं। (1) तुम्हें बादशाह के स्थान पर केवल 'शाहजादा' कहा जायेगा। (2) तुम्हें दिल्ली का लाल किला खाली करना होगा। (3) एक लाख रूपाये मासिक के स्थान पर तुम्हें 15 हजार रूपाये मासिक खर्च के लिए मिला करेंगे। इसके बाद डलहौजी ने बहादुरशाह से लाल किला खाली करने और कुतुब में रहने के लिए कहा। बहादुरशाह को ये सब बातें बहुत ही अपमानजनक लगीं और वह तथा उसके अनुयायी अंग्रेजों के और शत्रु बन गए।

नाना साहब के साथ अन्याय

1857 के विद्रोह का चौथा कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी का स्वर्गीय पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ अन्याय था। लार्ड डलहौजी ने नाना धुन्धू पन्त को पेन्शन देने से इनकार कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि बाजीराव द्वितीय की पेंशन 62 हजार रूपाये, जो कम्पनी की आरे बाकी थे, वे भी नहीं दिए गए। अंग्रेजों के अत्याचार की यहीं तक सीमा न रही। नाना साहब को यह नोटिस दिया गया कि विठूर की जागीर भी तुमसे जिस समय चाहे छीन ली जायेगी। अंग्रेजों के दुर्व्यवहारों ने नाना साहब को उनका घोर शत्रु बना दिया और उसने तथा उसके अनुयायियों ने 1857 ई. में अग्रेंजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम में खूब भाग लिया।

क्रीमिया तथा अफगानिस्तान के युद्धों का प्रभाव

1841–42 ई. में अंग्रेजों का जो सर्वनाश अफगानिस्तान में हुआ, उससे कम्पनी की भारतीय सेना के अनुशासन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और भारतीय यह समझने लगे कि अंग्रेज अजेय नहीं हैं। 1857 ई. के संघर्ष में क्रीमिया के युद्ध में अंग्रेजों की जो दुर्दशा हुई, उससे विद्रोह के नेता

अजीमुल्ला खॉ ने यह नतीजा निकाला था कि अंग्रेज अजेय नहीं हैं।

भारतीयों में अंग्रेजों की दासता से मुक्ति की तीव्र इच्छा

अंग्रेजों ने मैसूर के शासक, मराठों तथा अन्य भारतीय शासकों को परास्त करके भारत की स्वाधीनता हड़प कर ली थी। 1806 ई. में अंग्रेजों के विरूद्ध भारतीय सेनाओं ने बेल्लोर में विद्रोह किया था। पहले पहल कम्पनी अपने आपको सम्राट का दीवान कहती रही और उसी दृष्टि से राज करती रही परन्तु जब कम्पनी ने मुग सम्राट की उपाधि समाप्त कर दी, तो लोगों को पता चला कि कम्पनी का शासन वास्तव में स्थापित हो गया है जो कि विदेशी शासन था। 1922 ई. में अंग्रेज इतिहासज्ञ एफ. डब्ल्यू. बकलर ने लिखा था कि ''अठारह सौ सत्तावन में कोई बागी था तो वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी थी।''[14] अंग्रेजों ने मुगल सम्राट के एजेण्ट के रूप में सत्ता गहण की थी और बाद में सब वायदों को तोड़कर उन्होंने मुगलों की नजरें उपाधि इत्यादि बन्द कर दीं। अतः यदि कानूनी रूपा से देखा जाए, तो यह दिल्ली के बादशाह के विरूद्ध अंग्रेजों का विद्रोह था। भारत में इसलिए अंग्रेजों के विरूद्ध भावनाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। भारत में यह आम विश्वास प्रचलित था कि प्लासी के युद्ध के सौ वर्ष बाद कम्पनी का राज्य समाप्त हो जायेगा। इसलिए जनता ने इस क्राँति में सिपाहियों के साथ मिलकर भाग लिया और ब्रिटिश राज्य को समाप्त करने का यत्न किया।

सामाजिक तथा धार्मिक कारण

भारतवर्ष में अंग्रेजों ने हिन्दुओं के धर्म और सामाजिक व्यवस्था में दखल देना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने सती प्रथा को बन्द किया और विधवा विवाह की आज्ञा दे दी थी। चाहे आजकल हम इन बातों को सुधार समझें परन्तु उस समय रूढ़िवादी लोगों ने इस बात को अपने धर्म में हस्तक्षेप ही समझा।

अंग्रेजों ने हिन्दू उत्तराधिकार कानून (Hindu Succession Law) में भी ऐसे परिवर्तन कर दिए थे कि हिन्दू के ईसाई धर्म ग्रहण के बाद भी उस व्यक्ति का अपनी पैतृक सम्पत्ति में भाग बना रहेगा।[15]

अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा का भी नाश किया

अंग्रेजों की नीति यहाँ की अधिकांश जनता को अशिक्षित रखने की थी क्योंकि अधिक शिक्षित व्यक्तियों से विद्रोह की सम्भावना सदैव बनी रहती थी। भारतीय शिक्षा का अंग्रेजों ने किस तरह नाश किया था, इसके बारे मेंजान ब्राइट ने 1853 ई. में हाउस आफ कॉमन्स में कहा था, ''जिस देश में शिक्षण व्यवस्था का इतना प्रसार था कि हर गांव में अध्यापक वैसे ही नियमित रूपा से मिलता था जैसे मुखिया और पटेल, उस व्यवस्था को सरकार ने लगभग समूचा नष्ट कर दिया है।''[16] जो रिक्त स्थान बना है, उसकी पूर्ति के लिए या उसकी जगह और अच्छी व्यवस्था कायम रखने के लिए उसने कुछ भी नहीं किया। हिन्दुस्तान के लोग निर्धनता और ह्रास की दशा में है जिसकी मिसाल इतिहास में वहाँ के देशी राज्य में नहीं मिलती।

अंग्रेजों का भारतीयों से बुरा व्यवहार था

मेलकम लेविन ने, जो मद्रास हाई कोर्ट के जज और मद्रास कौन्सिल के सदस्य रह चुकें थे, अपनी पुस्तक **'इण्डियन रिवोल्ट'** में लिखा है, ''समाज के सदस्य की हैसियत से हम दोनों अर्थात् अंग्रेज और हिन्दुस्तानी, एक दूसरे से अपरिचित हैं, हमारा एक दूसरे से वही सम्बन्ध रहा है जो कि मालिकों और गुलामों में होता है। हमने हर ऐसी चीज पर अपना अधिकार जमा लिया है, जिससे कि देशवासियों का जीवन

सुखमय हो सकता था, हर ऐसी वस्तु जो कि देशवासियों को समाज में उभार सकती थी या मनुष्य की हैसियत से उन्हें ऊँचा कर सकती थी, हमने छीन ली है।'' **मेलकम लेविन ने आगे लिखा है, ''हमने उन्हें जातिभ्रष्ट कर दिया है। उनके उत्तराधिकार के नियमों को रद्द कर दिया है। हमने उनकी विवाह की संस्थाओं को बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्रतम रिवाजों की हमने अवहेलना की है। उनके मंदिरों की जायदादों को हमने जब्त कर लिया है। अपने सरकारी लेखों में हमने उन्हें काफिर कहकर कलंकित किया है। उनके देशी नरेशों के राज्य हमने छीन लिए हैं, और उनके अमीरों और रईसों की जायदादें जब्त कर ली हैं। अपनी लूट खसोट में हमने देश को बरबाद कर दिया है और लोगों को सता सता कर उनसे मालगुजारी बसूल ली है। हमने संसार के सबसे प्राचीन उच्च कुलों को निर्मल कर देने और उन्हें गिराकर पतित शूद्रों की स्थिति में धकेलने की चेष्टा की है।''**[17]

भारत को ईसाई बनाने का प्रयत्न

1857 की क्रांति का यह एक मुख्य कारण था कि भारतीयों को ईसाई बनाने की अंग्रेजों की बड़ी भारी इच्छा थी। इसका कारण यह था कि अंग्रेजों का धर्म ईसाई था और अंग्रेज समझते थे कि यदि भारत को ईसाई बना लिया जाए तो उनका शासन यहाँ अच्छी तरह चल सकेगा क्योंकि उस दशा में शासितों का शासकों के विरूद्ध विरोध जाता रहेगा और दोनों का धर्म एक हो जाएगा। इस लिए अंग्रेजों ने भारत को उसी तरह ईसाई बनाने की कोशिश की जैसे स्पेनवासियों ने अपनी विजय के बाद दक्षिण अमेरिका को। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष मैगल्स ने सन् 1857 ई. में पार्लियामेंट के अन्दर कहा था–

''परमात्मा ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इंगलिस्तान को इसलिए सौंपा है ताकि हिन्दुस्तान में एक सिरे से दूसरे सिरे तक ईसा मसीह का विजयी झंडा फहराने लगे।''[18] हममें से हर एक को अपनी पूरी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए ताकि सारे भारत को ईसाई बना लेने के महान कार्य में देश भर के अन्दर कहीं पर किसी कारण जरा भी ढील न आने पाये''।

हमने ऊपर मैंगल्स का विचार प्रकट किया है जो कि इंग्लैण्ड में कम्पनी के बहुत जिम्मेदार व्यक्ति थे। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने अपना ध्यान सेना की तरफ लगाया और उसको ईसाई बनाने के लिए सेना में पादरी नियुक्त किए। इतिहास लेखक नॉलेन लिखता है कि ''अंग्रेज सरकार सिपाहियों के धार्मिक भावों की अवहेलना करने लगी और बात बात में उनके धार्मिक नियमों का उल्लंघन किया जाने लगा। यहाँ तक कि कम्पनी की सेना के अनेक अंग्रेज अफसर खुले तौर पर अपने सिपाहियों का धर्म परिवर्तन करने के काम में लग गए।''[19] बंगाल की पैदल सेना के एक अंग्रेज कमाण्डर ने अपनी सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि ''मैं लगातार 28 साल से भारतीय सिपाहियों को ईसाई बनाने की नीति पर अमल करता रहा हूँ।''[20] कोजिस ऑफ दी इण्डियन रिवोल्ट नामक पत्रिका का भारतीय रचयिता लिखता है–

''सन् 1857 के शुरू में हिन्दुस्तानी सेना के बहुत से कर्नल सेना को ईसाई बनाने के अत्यन्त पैशाचिक और दुष्कर काम में लगे हुए पाए गए। उसके बाद यह पता चला कि इन जोशीले अफसरों में से अनेक न आजीविका के विचार से फौज में भर्ती हुए थे, न इसलिए भर्ती हुए थे कि फौज का काम उनकी प्रकृति के सबसे अधिक अनुकूल था, बल्कि उनका एकमात्र उद्देश्य यही था कि इसके द्वारा लोगों को ईसाई बनाया जाए। धीरे धीरे इन धर्म प्रचारक कर्नलों ने सिपाहियों को रिश्वतें दे देकर उन्हें ईसाई बनाना शुरू किया और ईसाई बनने वालों को तरक्की तथा दूसरे इनामों का भी लालच दिया। अन्य भारतीय सिपाहियों ने विरोध किया।''[21] इसका

नतीजा यह हुआ कि भारतीय सिपाहियों में बहुत बड़ा असंतोष फैलने लगा।

आर्थिक कारण

उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हो गई थी, इसलिए इंग्लैंड में बड़े बड़े कारखाने लग गए थे। उन कारखानों को कच्चे माल की आवश्यकता थी और माल तैयार होता था, उसके लिए मण्डियॉ चाहिए थीं ताकि वह माल वहाँ बिक जाए। इसलिए अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए भारतीय उद्योगों का नाश कर दिया और भारत से रूई तथा अन्य कच्चा माल इंग्लैंड भेजा जाने लगा। जब वहाँ माल तैयार हो जाता था, तो उसको बिकने के लिए भारत भेज दिया जाता था। इस तरह भारत का धन नियमित रूपा से विदेश जाने लगा और भारत एक निर्धन देश होता गया।

अंग्रेजों ने भारतीय जुलाहों को बलपूर्वक कम्पनी के लिए कार्य करने पर विवश किया। 1770 ई में अकाल पड़ा, तो पूर्तिया जिले की एक तिहाई आबादी कलकत्ते की कौंसिल के अनुसार मर गई। किसानों का भूमि कर बढ़ा दिया गया और जो समय पर कर नहीं चुकाते थे, उनकी भूमि को नीलाम कर दिया जाता था। इस तरह उनसे बलपूर्वक कर वसूल किया जाता था। इसलिए अंग्रेजी राज्य में किसान पिस गया। विलियम डिग्वी के अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पन्द्रह लाख आदमी भुखमरी के शिकार हुए। 1850 के बाद के पच्चीस वर्षों में पचास लाख आदमी सरकारी आँकड़ों के अनुसार दुर्भिक्ष से मरे।

1852 ई. में बम्बई में इनाम कमीशन ने बहुत सी जमीनों के अधिकारों की जॉच की और लगभग 21,000 जमींदारियों को जब्त कर लिया। अवध में शिकायतें बहुत अधिक थीं। इसलिए अवध बाद में विद्रोह का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया।

सैनिक कारण

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीयों को अपनी सेना में भर्ती करने की नीति अपनायी थी। चूंकि अंग्रेजों की तुलना में भारतीयों को कम भत्ता मिला था और उनके साथ अंग्रेज अधिकारियों का खराब व्यवहार था, इसलिए उनमें विद्रोह की भावना वैलूर के गदर के समय से ही विद्यमान थी। जब अफगानिस्तान में अंग्रेजों की हार हो ई, तो इससे बंगला सेना पर बहुत खराब प्रभाव पड़ा। बंगाल सेना अधिकतर अवध में भर्ती की जाती थी[22] और उसमें ऊँचे वर्ग के लोग शामिल थे। जब अवध को अंग्रेजी साम्राज्य के अकारण मिला लिया गया और बड़े बड़े जमीदारों की जमीनें जब्त कर ली गईं, तो अवध के सैनिकों के मन में बहुत रोष उत्पन्न हुआ।

लार्ड कैनिग ने एक कानून पास कर दिया था जिसके अनुसार भारतीय सिपाहियों को लड़ने के लिए समुद्र पार विदेशों में भेजा जा सकता था। भारतीय सैनिकों ने इस बात को बहुत बुरा समझा क्योंकि वे समझते थे कि इससे उनका धर्म नष्ट हो जाएगा। चूँकि सेना में ईसाई धर्म का प्रचार जोरों से चल रहा था, इसलिए सिपाहियों को ऐसा संदेह होना स्वाभाविक ही था। ऐसी अवस्था में सिपाहियों ने गाय और सूअर की चर्बी से मिले हुए कारतूस दिये गये जो प्रयोग करने से पहले मुँह से तोड़ने पड़ते थे। बहुत से लेखकों का विचार है कि कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी नहीं मिली हुई थी। परन्तु उनकी यह धारणा गलत है क्योंकि अंग्रेज इतिहासकारों ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि इन कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी मिली हुई थी। उदाहरणस्वरूपा सर जान के जो कि 1857 ई. की क्रांति का सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास लेखक माना जाता है, लिखता है – ''इसमें कोई संदेह नहीं कि इस मसाले को बनाने में गाय की चरबी का उपयोग किया गया था।''[23]

सर जान के यह भी लिखता है कि ''दिसम्बर सन् 1853 के कर्नल टकर ने बहुत साफ शब्दों में इस बात को लिखा था कि नए कारतूसों में गाय और सूअर दोनों की चरबी लगाई जाती थी। कलकत्ता (दमदम) के कारखाने में जिस ठेकेदार को कारतूसों के लिए चरबी का ठेका दिया गया था, उसके ठेके के कागज में यह साफ शब्दों में लिखा गया था, कि ''मैं गाय की चरबी लाकर दूँगा और चरबी का भाव चार आने सेर रखा गया था। लार्ड राबर्ट्स ने, जो इस क्रांति के समय में मौजूद था, लिखा है, [24] ''फोरेस्ट ने भारत सरकार के कागजों की हाल में जाँच की है, उस जाँच से सिद्ध होता है कि कारतूसों के तैयार करने में जिस मसाले का उपयोग किया गया था, वही मसाला वास्तव में दोनों निषिद्ध पदार्थों, अर्थात् गाय की चरबी और सूअर की चरबी को मिलाकर बनाया जाता था और इन कारतूसों के बनाने में सिपाहियों के धार्मिक भावों की ओर इतनी बेपरवाही दिखाई जाती थी कि जिसका विश्वास नहीं होता।''[25] इसी तरह लैकी ने लिखा है कि ''यह एक लज्जाजनक और भयंकर सत्य है कि जिस बात का सिपाहियों को विश्वास था, वह बिल्कुल सच थी। इस घटना पर फिर से दृष्टि डालते हुए अंग्रेज लेखकों को लज्जा के साथ स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सिपाहियों ने जिन बातों के कारण विद्रोह किया उनसे अधिक जबर्दस्त बातें कभी किसी विद्रोह को उचित ठहराने के लिए हो ही नहीं सकती।''[26]

इस तरह से हम कह सकते हैं कि ऊपर लिखे हुए कारणों से जो विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो रही थी, उस पर चरबी के कारतूसों के मामले ने एक चिनगारी के रूपा में कार्य किया परन्तु केवल कारतूस ही विद्रोह का एकमात्र कारण नहीं था। उदाहरणस्वरूपा, जस्टिन मैकार्थी ने लिखा है, ''सच तो यह है कि हिन्दुस्तान के उत्तर और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के अधिकांश भाग में यह देशी जनता की अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध बगावत थी चरबी के कारतूसों का मामला केवल इस तरह की एक चिनगारी थी जो अकस्मात इस विस्फोटक मसाले में आ पड़ी....वह युद्ध एक राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध था। एक अन्य इतिहासकार मैडले ने लिखा है– ''किन्तु वास्तव में जमीन के नीचे ही नीचे जो विस्फोअ मसाला अन्य कारणों से बहुत दिन से तैयार हो रहा था, उस पर चरबी लगे हुए कारतूसों ने केबल दियासलाई का काम किया।''[27]

घटनायें

1857 की महान क्रांति की घटनाओं का उल्लेख है–

सशस्त्र क्रांति का श्रीगणेश : यह क्रांति एक संगठित क्रांति थी और इस हेतु 31 मई 1857 ईसवी की तिथि सारे भारतवर्ष में क्रांति कराने के लिए निश्चित की गई थी परन्तु बैरकपुर के सिपाही मंगल पाण्डे की गलती से यह समय से पूर्व फैल गई। जब 29 मार्च, 1857 ई. को 19 नम्बर की पल्टन को बैरकपुर में गाय और सूअर की चरबी से मिले हुए कारतूसों को मुँह से काटकर प्रयोग करने के लिए कहा गया, तो मंगल पाण्डे नामक सैनिक इसे सहन न कर सका और उसने अन्य सिपाहियों को भी भड़काना शुरू कर दिया। जब कुछ अंग्रेज सैनिक अधिकारी उसे गिरफ्तार करने के लिए आगे बढ़े, तो उसने उनको भी जान से मार दिया परन्तु अन्त में उसको गिरफ्तार करके 9 अप्रैल, 1857 को फांसी की सजा दी गई। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के धर्म नष्ट करने के लिए चरबी के कारतूसों की योजना निकाली गई थी, उसको विफल करने के लिए मंगल पाण्डे का बलिदान व्यर्थ सिद्ध नहीं हुआ। उस हुतात्मा (शहीद) ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए जो अपना खून दिया उससे सारे भारतवर्ष की सोई हुई आत्मा जाग उठी और क्रांति की जो आग भड़की उसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी जलकर राख हो गई।

मेरठ में क्रांति का श्रीगणेश : 6 मई, 1857 ई. को तजुर्वे के तौर पर 90 भारतीय सवारों की एक कम्पनी को नए चरबी लगे हुए कारतूस दिए गए। 85 सवारों ने उन्हें दाँत से काटने से इनकार कर दिया।[28] 9 मई को सबेरे इन सिपाहियों को दस–दस साल के कैद की सजा सुनाई गई, उनसे हथियार रखबा लिए गए और उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर जेल में भेज दिया गया। इस घटना को देखने के लिए मेरठ छाबनी के अन्य सिपाही भी परेड मैदान में बुलाये गये थे। वे इसलिए बुलाए गए थे ताकि उनको भी भविष्य के लिए चेतावनी हो जाए। उन्हें यह सब दृश्य देखकर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने गुप्त सभाऐं की परन्तु क्रांति के नेताओं ने उन्हें 31 मई, 1857 तक शांत रहने की सलाह दी। यह घटना 9 मई, 1857 के प्रातःकाल की थी। 9 मई शाम को वे सिपाठी मेरठ नगर में घूमने लगे। विलसन, तत्कालीन जज, मुरादाबाद ने लिखा है कि मेरठ शहर की स्त्रियों ने स्थान–स्थान पर उन्हें यह कह कर लॉछना दी– ''छिः! तुम्हारे भाई जेलखाने में हैं और तुम यहाँ बाजार में मक्खियाँ मार रहे हो। तुम्हारे जीने पर धिक्कार है।''[29] मेरठ की स्त्रियों के ताने के शब्द सिपाहियों के मन में चुभ गए। उनके लिए अब धीरज रखना और 31 मई तक प्रतीक्षा करना असम्भव हो गया। इसलिये मेरठ के सिपाहियों और नागरिकों ने मिलकर 10 मई को जेल खाना तोड़ दिया और अपने कैदी सिपाहियों को छुड़ा लिया। अंग्रेज सेना मेरठ में बहुत थोड़ी थी, ऐसी परिस्थिति में वह कुछ भी न कर सकी। 10 मई, 1857 की ही रात्रि को मेरठ के सिपाही दिल्ली की तरफ रवाना हो गए। इससे पहले 9 मई को उन्होंने दिल्ली के नेताओं को कहला भेजा था कि हम दिल्ली पहुँच जायेगें। आप लोग तैयार रहें।

क्रांतिकारियों का दिल्ली में प्रवेश : मलेसन, ह्वाइट और विलसन, ये तीनों इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि मेरठ में क्रांति का सबसे पहले प्रारंभ हो जाना अंग्रेजों के लिए बरकत और भारतीय क्रांतिकारियों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। मालेसन स्पष्ट लिखता है कि यदि पूर्व निश्चय के अनुसार एक साथ एक तारीख को ही सारे भारत में स्वाधीनता का युद्ध शुरू हुआ होता, तो भारत में एक भी अंग्रेज जीवित न बचता और भारत में अंग्रेजी राज्य का अन्त हो गया होता। जे.सी. विलसन ने लिखा है कि वास्तव में मेरठ की स्त्रियों ने वहाँ के सिपाहियों को समय से पहले भड़काकर अंग्रेजी राज को गारत (नष्ट) होने से बचा लिया।

11 मई, 1857 को दो हजार घुड़सवार मेरठ से दिल्ली पहुँच गए। जब दिल्ले के अंग्रेज अधिकारी कर्नल रिपले को मेरठ के विद्रोही सिपाहियों के आगमन की सूचना मिल, तो उसने 54 नम्बर की पलटन को साथ लेकर मेरठ के क्रांतिकारियों को रोकने की कोशिश की परन्तु उसके अपने देशी सिपाही क्रांतिकारियों से जा मिले। कर्नल रिपले को जान से मार दिया गया। दिल्ली पर क्रांतिकारियों ने कब्जा कर लिया और बहादुरशाह को सम्राट घोषित कर दिया। बहादुरशाह ने बढ़े होने के बावजूद क्रांतिकारियों का नेतृत्व संभाला।

क्रांति का फैलना : दिल्ली की अंग्रेजी राज से मुक्ति का समाचार बिजली की तरह उत्तर भारत में फैल गया। 24 मई तक अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी तथा दिल्ली के आस–पास के अन्य स्थानों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और कम्पनी के राज को समाप्त कर दिया। 31 मई, 1857 ई. से पूर्व सारा रूहेलखण्ड, खान बहादुर खॉ के नेतृत्व में क्रांति में शामिल हो गया। वाद में यह क्रांति कानपुर, लखनऊ, बिहार और मध्यप्रदेश में फैल गई।

दिल्ली का अंग्रेजों द्वारा धेरा : लार्ड कैनिंग ने जब ये समाचार मिले, तो उसने इस क्रांति को दबाने के लिए एक महान योजना बनाई। उसने

पटियाला, जींद और नाभा की सिक्ख रियासतों, राजस्थान की राजपूत रियासतों, नेपाल, हैदराबाद और ग्वालियर से सहायता प्राप्त करने की कोशिश की जो उसको मिल गई। डाक्टर ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है कि ''अंग्रेजों ने पंजाबी और और हिन्दुस्तानियों में और हिन्दू और मुस्लिम में भेदभाव उत्पन्न किया। उन्होंने सारे पंजाब में बादशाह के नाम से झूठे फरमान जारी किए, जिनमें कहा गया था कि लड़ाई में जीत होते ही प्रत्येक सिक्ख का वध कर दिया जाएगा।''[30] बहादुरशाह ने गलतफहमी दूर करने के भरसक प्रयास किए। अंग्रेजों ने अपनी सफल कूटनीति के द्वारा पंजाब और नर्मदा के पास विद्राह को नहीं फैलने दिया। अंग्रेजों ने पंजाब से 6 प्रतिशत ब्याज पर बलपूर्वक सूद भी लिया। इस तरह से अंग्रेजों को काफी धन प्राप्त हो गया। इसके बाद सिक्खों और गोरखों की सहायता से जनरल विलसन ने दिल्ली को मई, 1857 में घेर लिया। दिल्ली में सप्लाई की कमी थी और बहादुरशाह बूढ़ा नेता था, वह दिल्ली के शासन को ठीक तरह से संगठित नहीं कर सका। इतना होते हुए भी दिल्ली की सेनाओं ने अपने योग्यतम नेता सूबेदार बख्तखॉ के नेतृत्व में अंग्रेजों का सख्ती से मुकाबला कई महीने तक किया और प्रधान सेनापति जनरल विलसन को बहुत बुरी तरह दबाया। बाद में जनरल विलसन को कश्मीर तथा पंजाब की सिक्ख रियासतों से और अधिक सहायता आ गई। अंग्रेजों ने दिल्ली में भारतीयों की फूट से भी पूरा लाभ उठाया और उन्होंने सम्राट बहादुरशाह के समधी मिर्जा इलाही बख्श को ऊँचे पद का लालच देकर अपनी तरफ मिला लिया और उसके द्वारा बहादुरशाह के सारे भेदों का पता लगा लिया। 14 सिम्बर, 1857 ई. को अंग्रेजी सेनाओं ने दिल्ली में प्रवेश किया और 17 सितम्बर, 1857 ई. को इलाहीबक्श की सहायता से बाहदुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद ब्रिटिश जनरल हडसन ने बहादुरशाह के दो बेटों को गोली मार दी और उस पर मुकदमा चलाकर उसे देश निर्वासित कर दिया गया। उसे आजन्म कैद की सजा दी गई। 1863 ई. में रंगून में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद दिल्ली की जनता के लिए अंग्रेजों ने कत्लेआम का आदेश दिया। इस बात की पुष्टि स्वयं अंग्रेज लेखकों के बयान से होती है। उदाहरणस्वरूप इन अत्याचारों के बारे में लार्ड एलफिन्स्टन ने सर जान लारेन्स को लिखा, ''दिल्ली के घेरे के खत्म होने के बाद हमारी सेना ने जो अत्याचार किए है, उन्हें सुनकर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र या शत्रु में भेद किए ये लोग सब से एक सा बदला ले रहे हैं। लूट में तो सचमुच हम नादिरशाह से बढ़ गए हैं। जनरल चैपलेन ने भी लिखा है, दिल्ली के निवासियों के कत्लेआम का खुला ऐलान कर दिया गया, हालांकि हम जानते थे उनमें बहुत से हमारी विजय चाहते हैं।''

पंजाब : सम्राट बहादुरशाह ने पंजाब के सिक्ख नेताओं और रियासतों को मिलाने का बहुत प्रत्यन किया था और इस हेतु ताजुददीन को वहाँ भेजा था परन्तु उसे जान लारेन्स की चालों के कारण सफलता नहीं मिली थी। पंजाब को अंग्रेजों ने अपने विरूद्ध एक सशस्त्र संघर्ष में रोकने के लिए बड़े प्रयत्न किए और जहाँ जहाँ क्रांति की लहर फैलती दिखाई दी वहीं भारतीय सेनाओं से शस्त्र रखवा लिये, परन्तु इतना होते हुए भी कई स्थानों पर क्रांति की चिनगारी भड़क उठी। फिरोजपुर, पेशावर, होती मरदान, जालन्दर, फिल्लौर और अजनाला में देशी पलटनों ने अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया परन्तु अंग्रेजों ने बहुत से सैनिकों से हथियार रखवा लिये। जो सैनिक हथियार रखने के बजाय भाग गए, उनको बाद में गिरफ्तार कर लिया गया और मृत्युदण्ड दिया गया।

हरियाणा : 1857 ई. में दिल्ली के चारों तरफ 150 मील तक प्रदेश हरियाणा कहलाता था। आजकल हरियाणा में गुड़गॉव, रोहतक, करनाल, जींद,

अम्बाला, भिवानी, सोनीपत, कुरूक्षेत्र तथा हिसार और महेन्द्रगढ़ जिले शामिल हैं। परन्तु उस समय ये जिले पंजाब में शामिल नहीं थे और यहाँ पर छोटे छोटे राजाओं और नवावों का राज्य था। यह प्रदेश अंग्रेजों के उस समय अधीन हो गया था जब 1803 ई. में दिल्ली पर अंग्रेजों ने कब्जा किया। 1857 ई. में यहाँ की जनता, राजे और नवाव अंग्रेजों के विरूद्ध हो गए। हरियाणा के कई गाँव (बिलासपुर, मुरथल, कुण्डली, खामपुर, हमीदपुर, सराय, झाड़सा, गुडगांव) तथा नगर (रिवाड़ी, भिवानी, हांसी, झज्जर, बल्लभगढ़, फर्रूखनगर) इस सशस्त्र स्वतंत्रता संघर्ष के केन्द्र बन गये। रिवाड़ी के शासक राव तुलाराम तथा उनके चचेरे भाई वीर शिरोमणि राव कृष्ण गोपाल, झज्जर के नवाब अर्ब्दुरहमान खॉ, मेवात के सरदार अलीहसन खॉ तथा उनके ससुर, समदखॉ, बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह, फर्रूखनगर के नवाब फौजदार खाँ इत्यादि ने विशेष रूपा से अंग्रेजों के विरूद्ध मोर्चा लिया और अपने प्रयत्नों से इस क्रांति को सफल बनाने की कोशिश की परन्तु अन्त में उनको असफलता प्राप्त हुई। राव तुलाराम नसीपुर में परास्त होकर ताँत्याटोपे से जा मिले और उनको बाद में ताँत्या ने अफगानिस्तान सहायता प्राप्त करने के लिए भेज दिया जहाँ कुछ समय के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। राव गोपाल कृष्ण तथा समदखाँ नसीपुर के युद्ध में भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ते हुए शहीद हो गए। झज्जर तथा बल्लभगढ़ के शासकों को फाँसी की सजा दी गई। इसके अतिरिक्त बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह के सम्बन्धी और झाड़सा परगना के जागीरदार बख्तावरसिंह को भी अंग्रेजों ने फाँसी की सजा दी क्योंकि उसने गुड़गॉव के आसपास अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व किया था।

झाँसी, अवध तथा बिहार

अवध तथा बिहार भी इस स्वतंत्रता संघर्ष के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए। कानपुर, लखनऊ, बरेली और अलीगढ़ में विशेष रूपा से अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष चला। कानपुर में ताँत्याटोपे और नाना साहब ने, बरेली तथा शेष रोहिलखण्ड में मौलवी अहमदशाह और खॉ बहादुर खाँ ने, अवध में बेगम हजरत महल तथा बजीर अली नकी खाँ ने, झाँसी में रानी लक्ष्मबाई ने और बिहार में कुंवरसिंह तथा अमरसिंह ने विशेष रूपा से अंग्रेजों के विरूद्ध भारत की स्वतंत्रता के लिए अद्वितीय वीरता से संघर्ष किए परन्तु अन्त में अनेक कारणों से उनको विफलता हुई। रानी झाँसी वीरतापूर्वक लड़ती हुई ग्वालियर के युद्ध में 18 जून, 1858 ई. को मारी गई। ताँत्याटोपे को मानसिंह नामक एक देश द्रोही ने गिरफ्तार करवा दिया और 18 अप्रैल, 1859 ई. को उसे फाँसी दी गई। मौलवी अहमदशाह को पावान के देशद्रोही राजा जगन्नाथ सिंह के भाई ने धोखे से मार दिया। नाना साहब, बेगम हजरत महल तथा जगदीशपुर के अमर सिंह नेपाल की तरफ भाग गए। (कुंवरसिंह का अप्रैल, 1858 ई. में ही स्वर्गवास हो गया) इस तरह महान स्वतंत्रता संग्राम का अप्रैल, 1859 ई. तक अन्त हो गया। अब हम इस स्वतंत्रता संघर्ष की विफलता के कारणों पर प्रकाश डालते हैं।

स्वतंत्रता संघर्ष की विफलता के कारण

- अंग्रेजों के पास क्रांतिकारियों की अपेक्षा आर्थिक और सैनिक साधन थे। सारे भारतवर्ष में विद्रोह नहीं फैला था। नर्मदा के पर का सारा दक्षिण भारत और पंजाब के अधिकतर भाग से अंग्रेजों की सहायता मिलती रही।
- कश्मीर, नेपाल, जींद, पटियाला, नाभा, जयपुर, हैदराबाद और ग्वालियर के महाराजाओं ने हर सम्भव तरीकों से अंग्रेजों की सहायता की। सर डब्ल्यू. रसल ने 'भारत में मेरी डायरी' में लिखा

है कि ''यदि सारे भारतवासी अपने सारे उत्साह और हिम्मत से अंग्रेजों के विरूद्ध मिल जाते, तो अंग्रेज पूर्ण रूपा से नष्ट हो जाते। यदि पटियाला और जींद के राजे हमारे मित्र न होते और यदि सिक्ख हमारी सेनाओं में भर्ती न होते तथा पंजाब में शांति न बनी रहती, तो दिल्ली पर हमारा अधिकार करना असम्भव होता। लखनऊ में सिक्खों ने हमारी अच्छी सेवा की और सभी स्थितियों में देशी लोगों ने हमारी रक्षा सेवाओं की उसी प्रकार सहायता तथा सेवा की और उन्हें भोजन कराया जिस प्रकार कि उन्होंने युद्ध भूमि में हमारी सेनाओं में उपस्थित होकर उनके बल को बढ़ाया।''

- क्रांतिकारियों के पास आधुनिक शस्त्र नहीं थे, उनके सिपाही प्रायः तलवारों से लड़ते थे, जबकि अंग्रेजी सेनाएँ तोपों से लड़ती थीं।
- अंग्रेजी सेनाओं की कमान बहुत अनुभवी अधिकारियों के हाथ में होती थी जबकि भारतीय सैनिक अधिकारी रानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे तथा कुछ अन्य नेताओं को छोड़कर प्रायः कम अनुभव रखते थे।
- क्रांतिकारियों की सेना में संगठन का भी अभाव था। बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद यह स्पष्ट प्रकट होने लगा।
- क्रांतिकारियों के पास सूचना पहुँचाने के तेज साधन नहीं थे जितने कि अंग्रेजों के पास थे। अंग्रेजों के हाथ में तार, डाक तथा रेल की सारी व्यवस्था थी।
- कम्पनी की सेनाएँ भी भारतीय सेनाओं से अधिक थीं। अप्रैल, 1858 ई. में देशी और रियासती सैनिक दलों के अतिरिक्त कम्पनी के पास 96,000 अंग्रेज सैनिक थे।
- क्राँति समय से पूर्व आरम्भ हो गई और सारे भारतवर्ष में एकदम नहीं फैली, अतः शेष स्थानों में अंग्रेज सावधान हो गए और उन्होंनं उन भारतीय सेनाओं के हथियार रखवा लिये जिनसे उन्हें विद्रोह की आशंका थी।

अंग्रेजों का अत्याचार

गुरमुख सिंह निहालसिंह ने लिखा है, ''इस आन्दोलन की असफलता के बाद अंग्रेजों ने उन पर बहुत अत्याचार किए जिन्होंने इसमें भाग लिया था।''

1857 के आन्दोलन का स्वरूपा

सवरकर तथा सीतारमैया का मत : अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या यह केवल विद्रोह था अथवा स्वतंत्रता संग्राम। अधिकांश ब्रिटिश लेखकों ने इस घटना को सिपाहियों का विद्रोह कहा है। शुरू–शुरू में कुछ भारतीय इतिहासकारों ने भी इसे सिपाहियों का विद्रोह कहा परन्तु अब अधिकतर भारतीय इतिहासकार इस बात को मानने लगे हैं कि भारतीयों को उद्देश्य अंग्रेजी राज को समाप्त करके स्वतंत्रता प्राप्त करना था, इसलिए चाहे यह विद्रोह योजनाबद्ध था या नहीं परन्तु यह राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतंत्रता संग्राम था। चाहे शुरू में यह सिपाही विद्रोह हो परन्तु बाद में इसमें देशभक्ति अवश्य आ गई थी। ''डाक्टर पटाभि सीतारमैया और डाक्टर पणिक्कर ने इस आन्दोलन को स्वतंत्रता प्रापित का एक महान आन्दोलन बताया है।[31] वीर साबरकर का भी यही मत है।

श्री पणिक्कर तथा ईश्वरी प्रसाद का मत : इस आन्दोलन के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि ''1857 की

घटनायें केवल विद्रोह नहीं थीं। यह उत्तर भारत का एक ऐसा विद्रोह था जिसका उद्देश्य ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तवाही और विदेशी बन्धनों से स्वतंत्रता प्राप्त करना था। इससे स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई और उसको प्राप्त करने के लिए लगभग एक शताब्दी और लग गई परन्तु इससे ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी अवश्य तबाह हो गई। इससे देशी रियासतों का ब्रिटिश राज में मिलाया जाना बन्द हो गया, इससे अंग्रेजों के प्रति लोगों की घृणा बढ़ गई और भविष्य में स्वतंत्रता आन्दोलन को इससे स्फूर्ति प्राप्त हुई। ''डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने यह भी लिखा है कि, ''यह विद्रोह योजनाबद्ध था और विद्रोह के नेता बहुत समय से लोगों में ब्रिटिश राज के विरूद्ध गाँव–गाँव में इस भावना को फैला रहे थे। वे नेता निःस्वार्थ और देशभक्त थे तथा उनको अपने देश की स्वतंत्रता से अधिक प्रिय और कोई वस्तु नहीं थी।''[32]

विल्सन तथा केयी का मत : जे.सी. विल्सन ने जो उस समय मुरादाबाद के जज थे, लिखा है कि, ''प्राप्य प्रमाणों से मुझे पूर्ण विश्वास हो चुका है कि एक साथ विद्रोह करने के लिए 31 मई, 1857 का दिन निश्चित किया गया था।'' केयी ने लिखा है कि ''महीनों तक, वास्तव में वर्षों तक नाना साहिब के दूत अपनी गुप्त मंत्रणा का जाल सारे देश में फैलाते रहे। एक राजदरवार से दूसरे तक, इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे तक, नाना साहिब के दूत, विभिन्न जातियों तथ धर्मों के राजाओं एवं सरदारों के लिए बड़ी सावधानी और रहस्यमय ढ़ंग से लिखे गए प्रस्ताव तथा निमंत्रण लेकर पहुँचे थे। केयी ने आगे लिखा है कि ''अवध के वजीर अली नकी खॉ के आह्वान पर हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने गंगा और कुरान की कसमें उठाकर प्रतिज्ञा की कि वे अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने मे अपनी जानें लड़ा देगें। अली नकी खॉ दूतों ने साधुओं और फकीरों का भेष बनाकर कलकत्ता से शुरू होकर उत्तर भारत की प्रत्येक छावनी में विप्लव का संदेश पहुँचाया। सैनिकों ने अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया और कोई भी ऐसा थाना या दफ्तर नहीं छूटा जहाँ विप्लव का संदेश न पहुँचा हो।''[33] सर ली ग्रैंड जैकब ने अपनी पुस्तक ''पश्चिमी भारत'' में लिखा है कि ''उस आश्चर्यजनक गोपनीयता का वर्णन करना कठिन है जिसके साथ यह सारी गुप्त मंत्रणा चलाई गई थी।''

इससे पता चलता है कि यह संघर्ष योजनाबद्ध था। यदि यह योजनाबद्ध न होता, तो सहसा यह सोर उत्तरी भारत में न फैलता और यहॉ के राज, जनता और सैनिक सामान्य रूपा से इसमें भाग नहीं लेते।

बहादुरशाह का घोषणा पत्र : इस आन्दोलन का उद्देश्य स्वराज प्राप्ति भी था, इस हेतु हम बहादुरशाह की एक घोषणा उद्धृत करते हैं जो उसकी तरफ से बरेली में प्रकाशित हुई थी। बहादुरशाह की यह घोषणा इस प्रकार थी : ''हिन्दुस्तान के हिन्दुओं और मुसलमानो, उठो! भाइयो उठो! खुदा ने जितनी बरकतें इंसान को दी हैं, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है। क्या वह जालिम नाकस, जिसने धोखा देकर यह बरकत हमसे छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे मजरूम रख सकेगा। क्या खुदा की मर्जी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है ? नहीं–नहीं! फिरंगियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज हो चुका है। यहाँ तक कि हमारे पाक मजहब को नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है। क्या तुम अब भी खामोश रहोगे ? खुदा यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में अंग्रेजों को अपने मुल्क से निकालने की ख्वाहिश, पैदा कर दी है और खुदा के फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से अंग्रेजों की इतनी कामिल शिकस्त होगी और हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उसका जरा भी निशान न रह

जायेगा।'' सम्राट बहादुरशाह की तरफ से एक और ऐलान दिल्ली से इसप्रकार जारी किया गया था जिसके कुछ वाक्य इस प्रकार थे : ''ये हिन्दुस्तान के फरजन्दो/ अगर हम इरादा कर लें, तो बात की बात में दुश्मन का खात्मा कर सकते हैं। हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म तथा देश को, जो हमें जाने से भी ज्यादा प्यारे हैं, खतरे से बचा लेंगें।''

बहादुरशाह जफर ने भारतीय नरेशों के नाम एक पत्र भेजा था जिसमें उनसे इस सशस्त्र स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल होने के लिए कहा गया था। बहादुरशाह का यह पत्र इस प्रकार था, ''मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस जरिए से भी हो और जिस कीमत पर हो सके फिरंगियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाए। मेरी यह जबरदस्त ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दुस्तान आजा हो जाए। अंग्रेजों को निकाल दिए जाने के बाद अपने निजी लाभ के लिए हिंदुस्तान पर हुकूमत करने की मुझ में जरा भी ख्वाहिश नहीं है। अगर आप सब देशी नरेश दुश्मन को निकालने की गरज से अपनी अपनी तलवार खींचने के लिए तैयार हों, तो मैं इस बात के लिए राजी हूँ कि अपने तमाम शाही अख्तियारात और हकूक देशी नरेशों के किसी ऐसे गिरोह के हाथों में सौंप दूँ जिसे उस काम के लिए चुन लिया जाए।''[34] अतः सन् 1857 की क्रांति वास्तव में भारत के हिन्दु और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता दोनों की ओर से देश को विदेशियों की राजनीतिक अधीनता से मुक्त कराने की एक जबर्दस्त और व्यापक कोशिश थी। इसके अतिरिक्त अपने मत की पुष्टि के लिए ''लन्दन टाइम्स' के विशेष प्रतिनिधि, सर विलियम हार्वर्ड रसल का प्रमाण देते हैं जो 1857 की क्रांति के समय भारत में मौजूद था। वह इस विषय में यह लिखता है, ''1857 का युद्ध ऐसा था जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी कौम के नाम पर, बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। उस युद्ध में समूचे राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जूए को फेंककर उसकी जगह देशी नरेशों की पूरी सत्ता और देशी धर्मों का पूरा अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प लिया था। अतः हम किसी दृष्टि से भी देखें तो इस संघर्ष का यह उद्देश्य अवश्य था कि विदेशी कम्पनी की सत्ता का अंत किया जाए और भारत को अंग्रेजी शासन के स्वतंत्र किया जाए। इसलिए यदि इसे भारत का प्रथम महान सशस्त्र स्वतंत्रता संघर्ष कह दिया जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। सन् 1857 के शहीदों के अमर बलिदानों का यही सही मूल्यांकन है।

1857 के आन्दोलन के परिणाम

1857 की घटनाओं के कारण ब्रिटिश जनता का ध्यान भारत की तरफ खिंचा और उसने कम्पनी के शासन का अन्त करने का निश्चय किया, जैसे ब्राइट ने लिखा है कि इस प्रश्न पर ब्रिटिश राष्ट्र की आत्मा जाग उठी और उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को तोड़ देने का निश्चय किया। कम्पनी को तोड़कर भारत का शासन ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया।

दूसरे, 1857 के आन्दोलन के बाद अंग्रेजों और भारतीयों में आपसी घृणा बहुत अधिक उत्पन्न हो गई। अंग्रेजों ने भारतीयों से मिलना जुलना बहुत कम कर दिया। इसलिए दोनों में जो खाई पहले से ही थी, और अधिक चौड़ी हो गई।

अंग्रेजों ने आन्दोलन को दबाने के लिए जो अत्याचार किए, उनकी स्मृति बहुत दिनों तक भारतीयों के मन में रही।

तीसरे, अंग्रेजों का भारतीयों पर से विश्वास बिल्कुल उठ गया। पहले तो अंग्रेज भारतीय सैनिकों पर कुछ विश्वास करते भी थे, परन्तु बाद में उन्होंने इतना भी विश्वास करना बन्द कर दिया। इसलिए इसके बाद अंग्रेजों ने भारतीयों को काफी समय तक कहीं भी किसी

महत्वपूर्ण स्थान पर न लगाने की नीति को अपनाया।

चौथे, भारत में अंग्रेजी शिक्षा का अधिक प्रचार किया गया ताकि भारतीय अपनी पुरानी कटट्रता को छोड़कर अंग्रेजी न्याय पद्धति और कानून को अच्छा समझें।

पाँचवें, भारतीय सेना को पुनर्गठित किया गया। अंग्रेजी सेना और अधिकारियों की संख्या बढ़ा दी गई। भारतीयों को सेना में प्रान्तीय और जातीय आधार पर संगठित कर दिया गया ताकि विविध जातियों के लोग एक दूसरे से अधिक न मिल सकें और अंग्रेजों के विरूद्ध न खड़े हो सकें। इसके अतिरिक्त तोपखाने पर सारा कण्ट्रोल अंग्रेजों ने अपना रखा।

छठे, अंग्रेजों ने यह महसूस किया कि उन्होंने भारतीय राजाओं महाराजाओं से सम्बन्ध खराब कररके बहुत गलती की है क्योंकि जनता उनका साथ नहीं दे सकती थी बल्कि नरेशों में से कुछ मित्र के रूपा में तलाश किए जा सकते थे। इसलिए महारानी विक्टोरिया ने उनको विश्वास दिलाया कि भविष्य में उनके राज्य को अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल नहीं किया जाएगा और अंग्रेजी सरकार उनके मान सम्मान की रक्षा करेगी। इसका परिणाम यह निकला कि भविष्य में देशी राजाओं तथा अंग्रेजों में गठजोड़ हो गया और देशी राजाओं की आन्तरिक विद्रोह से रक्षा की जिम्मेवारी अंग्रेजों ने संभाली और देशी रियासतों के शासक भोग विलास में लीन हो गये। दोनों ने मिलकर भारतीय राष्ट्रवाद की प्रगति को रोकने का पूरा प्रयत्न किया।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा, 1858

भारत में राजा महाराजाओं को लार्ड कैनिंग द्वारा महारानी विक्टोरिया की घोषणा सुनाई गई जिसमें कहा गया कि ''ईश्वर के आशीर्वाद से जब देश में अन्दरूनी शांति स्थापित हो जायेगी, तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत की सब प्रकार की उन्नति के लिए फिर से यत्न किया जाए। पार्लियामेंट की अनुमति से ही हमने कई कारणों से ईस्ट इण्डिया कम्पनी से यह भार अपने कन्धों पर लिया है।[35] इसलिए हम सब भारतवासियों से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी तरफ, हमारे उत्तराधिकारियों की तरफ तथा हमारे द्वारा नियुक्त भारतीय शासकों को अपनी पूरी श्रद्धा और भक्ति दिखाएँ । हम भारत के राजाओं को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ जो उनकी संधियॉ थीं, उनका हमारे द्वारा पालन किया जाएगा और हम उन राजाओं से भी आशा करते हैं कि वे भी उनका पालन करेंगें। हम अपने साम्राज्य की सीमाएँ और अधिक विस्तृत नहीं करना चाहते। जहाँ हम दूसरों को यह आज्ञा नहीं दे सकते कि वे हमारे राज्य पर आक्रमण करें और उन्हें कोई दण्ड न मिले, हम भी दूसरों पर कोई आक्रमण नहीं करेगें। हम राजाओं और महाराजाओं के अधिकारों, प्रतिष्ठा और सम्मान को अपना सम्मान समझेंगे और हम चाहते हैं कि वे सब और भारतीय जनता उस समृद्धि और समाजिक उन्नति का उपभोग करें जो केवल आन्तरिक शांति तथा अच्छी सरकार के द्वारा प्राप्त हो सकती है। किसी मनुष्य को उसके धर्म के कारण तंग नहीं किया जायेगा और न ही कोई पक्षपात किया जायेगा। भारत का शासन चलाते समय और कानून बनाते समय वहाँ के पुराने अधिकारों और रीति रिवाजों का भी ध्यान रखा जायेगा। अपराधियों को बिना शर्त के क्षमा दी जाती है। जब ईश्वर की कृपा से शांति स्थापित हो जायेगी, तो हम सार्वजनिक कार्यों की उन्नति करेंगे और सारी प्रजा के हित के लिए शासन चलाएँगें। उसकी समृद्धि में ही हमारी सुरक्षा है और उसकी कृतज्ञता में ही हमारा गौरव है।''[36]

1857 जैसे विद्रोह का असफल होना अप्रत्याशित नहीं था। भारतीय नेताओं को इस बात का पूर्ण अहसास हुआ कि बिना एकता के भारत के लोगों को क्रियाशील करना सम्भव नहीं

है। 1885 के बाद जब कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी, इसी दिशा की ओर कदम बढ़ाया गया। भाग्यवश भारत को कुछ ऐसे नेताओं की सेवायें उपलब्ध हो गई जो केवल विद्रोह करना ही नहीं जानते थे बल्कि वैचारिक दृष्टि से भी पूर्णतया परिपक्व थे। उन्होंने जल्दबाजी भी नहीं दिखाई, उन्होंने अंग्रेजों द्वारा थोपे गये राजनैतिक तथा आर्थिक तंत्रों का समुचित अध्ययन किया और फूँक–फूँक कर आगे कदम रखना शुरू किया। यही वैचारिक परिपक्वता भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की आधार शिला बनी। 1857 के विद्रोह की स्मृतियाँ, विद्रोह की असफलता के बावजूद भी, पूरे आन्दोलन के दौरान भारतवासियों के मस्तिष्क पर छाई रहीं। वे आन्दोलनकारियों के लिए प्रेरणा का एक स्रोत बन गई, वास्तव में, जैसा कि स्नेह महाजन ने कहा है, ''1857 के विद्रोह की यादों ने अंग्रेंजों को विद्रोह से भी अधिक हानि पहुॅचाई।''[37]

1857 का विद्रोह असफल रहा, किन्तु इसने अंग्रेजी शासन को झकझोर अवश्य दिया। अंग्रेज भारत को मैकाले की आँखों से देखने के आदी हो चुके थे। वे भारत को असभ्य, असंस्कृत, गँवार और निरीह लोगों का देश समझने लगे थे। उन्होंने एक मिथक की सृष्टि कर ली थी कि भारत इतना पिछड़ा हुआ देश है कि उसको अंग्रेजों के संरक्षण की ही आवश्यकता है। मैकाले ने भारत में गंवारपन के अलावा और कुछ नहीं पाया। 1835 में उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा था : ''जब हम विशुद्ध दर्शन और वास्तविक इतिहास के दर्शन को प्रोत्साहन दे सकते हैं तो क्या हम सरकारी खर्च पर निम्नलिखित विषय पढ़ाये जाने का अनुमोदन करेंगें, चिकित्सा सिद्धांत, जिन पर अंग्रेजी पशु चिकित्सकों को लज्जा आयेगी, ज्योतिष, जिस पर अंग्रेजी विद्यालयों की बलिकायें हॅस पड़ेगी, इतिहास, जिसमें तीस फुट लम्बे राजाओं और तीस हजार वर्षों तक चलने वाले राज्यकालों का वर्णन है, और भूगोल जिसमें शीरे और मक्खन के समुद्रों का वर्णन है।''[38]

इस तरह की तस्वीरों को अंग्रेज यथार्थ मान चुके थे। उनका ख्याल था कि भारतीय हर हाल में गुलाम बनाये जा सकते हैं। 1830–55 के बीच के कई प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि अंग्रेज भारतीयों से किसी प्रकार के सक्रिय प्रतिरोध की आशा नहीं करते थे। जिन स्थितियों में भारतीय सिपाहियों को उन्होंने अपनी छावनियों में रखा था उनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे भारतीयों को जन्मजात गुलामों के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते थे। जो भेदभाव अंग्रेज अफसर अंग्रेज सिपाहियों तथा भारतीय सिपाहियों के बीच करते थे उससे भी स्पष्ट प्रकट होता है कि वे भारतीयों को हिकारत की नजर से देखते थे, जिस भेदभावपूर्ण व्यवहार का अनुसरण अंग्रेजों ने किया उससे स्पष्ट है कि वे 1857 जैसे विद्रोह की कल्पना भी नहीं कर रहे थे। विद्रोह के कारण तो सब मौजूद थे, और अंग्रेजों को भी इन कारणों का अहसास था, किन्तु वे यह नहीं समझते थे कि सात रूपाया माहवार पाने वाले सिपाही उनके विरूद्ध खड़े होंगे। 1857 की प्रवृत्ति ने जैसे उनको नींद से जगा दिया। पहली दफा उनको अहसास होने लगा कि भारत की आत्मा में विद्रोह की सम्भावनायें मौजदू हैं।

इन सम्भावनाओं को प्रस्फुटित होने में कुछ समय लगा। अभी उस आधार का निर्माण नहीं हुआ था जो किसी व्यापक आन्दोलन की सफलता के लिए आवश्यक होता है। विद्रोह की असफलता के कई कारणों में एक कारण यह भी था कि विद्रोह किसी वैचारिक धरातल पर अवस्थित नहीं था। इस दिशा में 19 वीं शताब्दी के मध्य से काम शुरू हो चुका था, भारत के चिन्तक भारत की वर्तमान अवस्था का मूल्यांकन करने में जुटे थे। जब तक अपनी कमजोरियों का अहसास नहीं होता, तब तक किसी महान उपलब्धि का कार्यक्रम नहीं बन सकता। 1850 के बाद भारत में कई धार्मिक आन्दोलनों की शुरूआत हुई। ये आन्दोलन मूलतः धर्म पर आधारित थे किन्तु ये सुधारवादी आन्दोलन भी थे। यही कारण

है कि इनके माध्यम से भारत में नव जागरण की एक लहर सी छा गई। एक नयी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इस नयी चेतना के प्रकाश में भारतीयों को अपनी पराधीनता का गहराई से अहसास होने लगा, इसी अहसास के कारण और 1857 की क्रांति के अनुभवों के आधार पर, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की नींव पड़ी।

संदर्भ सूची

1. **गंगाधर नारायण,** प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 5
2. **वही, पृ. 7**
3. **वही,** पृ. 13
4. **वही,** पृ. 24
5. **डॉ. सुशील पाठक,** भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 31
6. **वही,** पृ. 47
7. **वही,** पृ. 110
8. **डॉ. सुभाष कश्यप,** स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 107.
9. **रामविलास शर्मा,** स्वाधीनता संग्राम बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ. 201.
10. **डॉ. पुखराज जैन,** भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 191
11. **वही,** पृ. 196
12. **वही,** पृ. 217
13. **वही,** पृ. 239
14. **मोती लाल त्रिपाठी**, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ. 29
15. **गोरे लाल तिवारी**, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ. 121.
16. **पुखराज जैन,** भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन व भारतीय संविधान, पृ. 11.
17. **वही,** पृ. 23.
18. **वही,** पृ. 27.
19. **मन्मनाथ गुप्त,** क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. 119
20. **भगवानदास श्रीवास्तव,** बुन्देलखण्ड में स्वाधीनता आन्दोलन 1857–60, पृ. 169.
21. **वही,** पृ. 191
22. **वही,** पृ. 221
23. **वही,** पृ. 249
24. **वही,** पृ. 269
25. **डॉ. सुभाष कश्यप,** स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 137.
26. **वही,** पृ. 169
27. **वही**, पृ.178.
28. **वही**, पृ. 223.
29. **मन्मनाथ गुप्त,** क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. 219
30. **वही,** पृ. 249.
31. **वही,** पृ. 267.
32. **मोती लाल त्रिपाठी**, बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ. 57.
33. **वही,** पृ. 68.
34. **वही,** पृ. 114.
35. **वही,** पृ. 221.
36. **गंगाधर नारायण,** प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, पृ. 13
37. **वही,** पृ. 19
38. **वही,** पृ. 39

Copyright © 2017, Dr. Kishan Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.